ISSN 2349-3887

# दोआबा

## समय से संगत

*उसने एक गहरी सांस लेकर*
*मेरे कंधे को छुआ, और*
*मुझे यक़ीन दिलाया कि*
*अब और कब तक यहां*
*इस छावनी में*
*संगीनों की पहरेदारी*
*तले दुबके रहोगे*

*यह वक़्त तुम्हारे*
*इस छावनी से*
*बाहर निकल पड़ने का है*

*उसका कहा मानकर*
*मैंने ख़ुद को*
*छावनी के नुकीले बाड़े से*
*आज़ाद कर लिया*

*मैंने महसूस किया जैसे*
*मेरी शिराएं*
*अचानक छावनी की*
*पहरेदारी से*
*मुक्त हो गई हैं*
*और छावनी से बाहर*
*आकाश पर*
*सूरज अपना तन्हा*
*सफ़र पूरा करके*
*समंदर की*
*गहराइयों में उतर गया है*

– *जाबिर हुसेन*

**जनवरी–मार्च 2025**

# दोआबा

**समय से संगत**

# दोआबा

समय से संगत

**जनवरी-मार्च 2025**

वर्ष 19 : अंक 51

**आवरण एवं रेखांकन**

अनुप्रिया

**मानद सहयोग**

**शहंशाह आलम**

**लता प्रासर, पवन कुमार, जावेद एक़बाल**

**प्रबंध**

**मोनिश हुसेन**

**कार्यालय** : सुनील हेम्ब्रम

**संपर्क**

247 एम आई जी

लोहियानगर, पटना - 800 020

e-mail : doabapatna@gmail.com

मो.-08409044236

सर्वाधिकार सुरक्षित

पाकीज़ा ऑफसेट

शाहगंज, पटना-800 006

मो.-09334116542

मूल्य : ₹ 175/- (डाक खर्च अलग)

रचनाओं में अभिव्यक्त विचार रचनाकारों के अपने हैं।
संपादक का इन विचारों से सहमत होना ज़रूरी नहीं।

***संपादक* : जाबिर हुसेन**

मो.-09431602575

जनवरी-मार्च 2025

# दोआबा

समय से संगत

## अनुक्रम

जाबिर हुसेन : अपनी बात / 05

**रचना समय**

रजनी शर्मा : मृगदाव / 08
वनखंडियों के भीतर टंगी पताका / 12
कृष्णचूड़ा / 15
जब खिले बांस के फूल / 19
और महुआ के फूल झरने लगे ... / 34
विद्याभूषण : ज़मीर, ज़मीन और जज़्बा / 53
रंजना जायसवाल : कांव-कांव / 62
सत्या शर्मा 'कीर्ति' : बावरा मन देखने चला एक सपना / 70
नीरज नीर : सीलन / 78
ज्योत्सना सिंह : इंतज़ाम / 88
मृत्युंजय कुमार मनोज : वो नाश्ता / 90
महेश कुमार केशरी : पहाड़ी / 92

**कविता समय**

सुधीर सक्सेना / 96
शरद रंजन शरद / 99
अनवर शमीम / 102
चारुमित्रा / 105
अनिता रश्मि / 107
यशोधरा भटनागर / 109
मनोज मोहन / 111
दीप्ति कुशवाह / 113
गिरीश पंकज / 116
संजय सिंह / 118
सुमिता / 121

**संवाद**

*सूरजमुखी अंधेरे के (कृष्णा सोबती)*
*नंद भारद्वाज :* आकाश में घरौंदे नहीं बनते / 126
*गुजराती दलित कविता (मालिनी गौतम)*
राजेश्वर वशिष्ठ : मालिनी गौतम के परिप्रेक्ष्य में पड़ताल / 133
*रेत का सफ़र (जाबिर हुसेन)*
शहंशाह आलम : रेत की दुनिया में तन्हाई का
सफ़र तय करते जाबिर हुसेन / 142
राजाराम भादू : जाबिर हुसेन का अवदान / 145
*कुछ उनकी यादें... कुछ उनसे बातें... (ज़ाहिद ख़ान)*
अब्दुल ग़फ़्फ़ार : उन अफ़सानानिगारों की बात, जिनके बिना
उर्दू अफ़साने का तसव्वुर नहीं किया जा सकता / 147
*सुल्तान अहमद पर केन्द्रित आर्यकल्प का अंक (सम्पादक - हरियश राय)*
देवेन्द्र आर्य : मुक्त नहीं मस्त हूं मैं / 154

***दोआबा-50 ( जुलाई-सितम्बर, 2024 )***

रामजी दास गुप्ता : असामान्य अंक / 157
अवधबिहारी पाठक : *दोआबा का दस्तावेज़ी पचासवां अंक / 159*

□□

जाबिर हुसेन

# अजनबी इबारत

हज़ार बरस पुराने संदूक़ की बेड़ियां खुलीं तो, तह-दर-तह, हिफ़ाज़त से रखे दस्तावेज़ में दर्ज एक ख़ूबसूरत इबारत देखने को मिली।

इबारत की भाषा और लिपि, दोनों से अजनबीपन की गंध निकलती महसूस हुई। इस गंध ने इबारत को समझने और इसके अर्थ तक पहुंचने का रास्ता आसान कर दिया। इबारत की भाषा बिल्कुल सादा और सपाट नज़र आई।

अपने पुरखों ने आइंदा नस्लों के लिए आसानी से समझ में आनेवाली एक नसीहत दर्ज कर दी थी, इस अजनबी इबारत में।

नसीहत में कहा गया था-

'क्या तुमने तारीख़ का वो बाब नहीं पढ़ा, जहां हमारी क़ुर्बानियों और हमारी तकलीफ़ों की हमेशा ज़िंदा रहने वाली मिसालें दर्ज हैं?

क्या तुमने इन मिसालों से नहीं सीखा कि हम और हमारे पुरखे आग की राहदारियों से किस तरह हंसते-मुस्कुराते गुज़रते रहे हैं?

किस तरह आग की पट्टियां और अंगारों की सेज हमारा मुकद्दर बनी रही हैं, क्या तुमने नहीं जाना!

क्या तुम अनजान हो इस हक़ीक़त से कि तुम्हारे पुरखों की पुश्त पर ज़हरीले नेज़ों की अनी से हमले हुए, और उनके सर उनके धड़ों से अलग कर दिए गए?

क्या तुमने यह नहीं जाना कि तुम्हारे मूरिस (पुरखे) सिर्फ़ इसलिए गुमनाम जगहों पर दफ़्न किए गए कि उनके दुश्मन क़ब्र से उनकी लाशें निकालकर उनकी बे-हुरमती नहीं करें!

क्या तुमने इनमें से एक बात भी नहीं जानी!

क्या तुम तमाम ज़िंदगी सचमुच इन बातों से ग़ाफ़िल रहे?

अगर यह सच है कि तुम तारीख़ की इन अहम सच्चाइयों से सचमुच अंजान रहे, तो हमारे दिल में तुम्हारे लिए हमदर्दी का जज़्बा है।

पर जान लो कि क़ुदरत ने तुम्हें भी, हमारी ही तरह, यह ज़िम्मेदारी सौंप दी है कि तुम भी, हमारी ही तरह, अपनी आनेवाली नस्लों को बता सको कि हम और हमारे मूरिस किस तरह अपनी हथेलियों पर अंगारे लिए आग की राहदारियों से गुज़रते रहे हैं।

लेकिन अपनी नस्लों को ये सब बताने के लिए क्या यह ज़रूरी नहीं कि तुम ख़ुद भी आग की राहदारी पर चलने की मश्क़ करो, और अपनी हथेलियों पर अंगारों के दस्ते संभाले आगे बढ़ो।'

हज़ार बरस पुराने संदूक़ की बेड़ियां खुलीं तो, तह-दर-तह, हिफ़ाज़त से रखे दस्तावेज़ की यह ख़ूबसूरत इबारत हमारी आंखों के परदे पर आसमान में खिले तारों की तरह उभर आई। हमने अपने लहूरंग वजूद की गहराइयों में ज़िंदगी की चंद रौशन तस्वीरें उभरती महसूस कीं।

हज़ार बरस पुराने संदूक़ की बेड़ियां खुलीं तो बस खुली ही रहीं। उन्हें दोबारा, आनेवाली किसी सदी में, ख़ुद अपनी नस्लों के लिए महफ़ूज़ कर देने का जज़्बा, पता नहीं क्यों, मुझे अपने अंदर महसूस नहीं हुआ।

मैंने हज़ार बरस पुराने संदूक़ की बेड़ियां खोल दीं, और संदूक़ में, तह-दर-तह, हिफ़ाज़त से रखे दस्तावेज़ में दर्ज, इस ख़ूबसूरत इबारत को, हमेशा-हमेशा के लिए, आज़ाद कर दिया।

आज़ाद, हमेशा-हमेशा के लिए आज़ाद!

*'कोलाहल में शब्दों की लय' से*

□□